फणीश्वरनाथ रेणु
मन्मथनाथ गुप्त

निरन्तर गतिशील : फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने जीवन को कभी एक ठहरी हुई स्थिति के रूप में नहीं लिया। जीवन उनकी आँखों में था—एक गतिमय एसेम्बली लाइन की तरह जो चलती जाती है, यों उसकी आप कोई भी व्याख्या कर लीजिए, उस पर कोई भी दर्शनशास्त्र लाद दीजिए। रेणु की दृष्टि एक कवि की दृष्टि थी, जो पहले से कोई उपसंहार निकालने से इनकार करती है।

1965 में प्रकाशित अपने उपन्यास 'जुलूस' की भूमिका में जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को उद्घाटित कर सारे ताश संसार की मेज पर रखते हुए उन्होंने लिखा था—

"पिछले कुछ वर्षों से मैं एक अद्भुत भ्रम में पड़ा हुआ हूँ। दिन-रात, सोते-बैठते, खाते-पीते मुझे लगता है कि मैं एक विशाल जुलूस के साथ चल रहा हूँ। अविराम।"

"यह जुलूस कहाँ जा रहा है, ये लोग कौन हैं, कहाँ जा रहे हैं, क्या चाहते हैं, मैं नहीं जानता। इस महा कोलाहल में अपने मुँह से निकाला हुआ नारा मुझे सुनाई नहीं पड़ता। चारों ओर एक बवण्डर मँडरा रहा है, धूल का"...

"इस भीड़ से निकल राजपथ के किनारे सुसज्जित 'बालकोनी' में खड़ा होकर जुलूस को देखने की चेष्टा की है, किन्तु इस भीड़ से अलग होने की सामर्थ्य मुझमें नहीं। इस जुलूस में चलने वाले नर-नारियों से —अपने आस-पास के लोगों से परिचय नहीं। लेकिन उनकी माया-ममता से मैं छिटककर अलग नहीं हो सकता।"

जीवन के सम्बन्ध में 'रेणु' का यह दृष्टिकोण उनके दैनिक जीवन में बराबर प्रतिफलित हुआ।

'रेणु' के जीवन-दर्शन में स्वाभाविक रूप से घुमक्कड़ी का बहुत बड़ा स्थान था। अवश्य उनकी घुमक्कड़ी राहुल की तरह तिब्बत, श्रीलंका, रूस आदि तक विस्तृत नहीं थी, फिर भी जैसा कि उनके उपन्यासों को पढ़ने से ज्ञात होता है, वह जिन इलाकों के अपने उपन्यासों का ताना-बाना फैलाकर आगे लाए वह उन इलाकों की भौगोलिक बहिरंग और अन्तरंग जीवन नखदर्पण में था। कहते हैं, हर बारह कोस पर भाषा बदल जाती है, उनको अपने इलाकों का ज्ञान इतना सूक्ष्म था कि वह इस फर्क को बता ही नहीं, प्रस्तुत कर सकते थे। वह बंगला, हिन्दी, नेपाली इस खूबी से बोलते थे कि उनको आसानी से नेपाली या बंगाली समझा जा सकता था। सच तो यह है कि जब वह ख्याति के चरम शिखर पर पहुँचकर

भारत प्रसिद्ध हो गए, तो बहुत से बंगाली उनके सम्बन्ध में चोरी-चोरी यह कहते थे कि वह वस्तुतः बंगाली हैं, पैदा कहीं भी हुए हों। यदि वह मध्ययुग में पैदा होते, जैसे जयदेव हुए थे, तो उन्हें अवश्य कई क्षेत्रों के लोग जबर्दस्ती अपनाते। इतने बड़े लेखक होने पर भी रेणु की आर्थिक हालत बराबर डगमगाती ही रही। उन्हें आकाशवाणी में एक नौकरी दी गई थी, पर बाद में उन्होंने नौकरी छोड़ दी। शैलेन्द्र ने फिल्म बहुत सुन्दर बनाई, पर धन्यवाद है हिन्दी फिल्म दर्शकों को, वह फिल्म आर्थिक रूप से सफल नहीं हुई। शैलेन्द्र उसी गम में सिधार गए। बाद में इसी फिल्म को राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

जब हम पहले-पहल हजारीबाग में मिले, तभी रेणु कुछ-कुछ प्रसिद्ध हो चले थे। गरीबी उनका पीछा कर रही थी। पर वह इस बात के प्रति उदासीन थे। पति-पत्नी दोनों बहुत सादा जीवन व्यतीत करते थे। हजारीबाग के सम्भ्रान्त लोग उनको नहीं जानते थे और रेणु ऐसे थे कि उनको इसका कोई खयाल नहीं था। साहित्य के अलावा मुझमें और रेणु में सामान्य दिलचस्पी और थी, वह यह कि देश तो स्वतन्त्र हो गया, अब वहाँ समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए, यह मोर्चा फतह करने के बाद समाजवाद का मोर्चा तैयार था। वह इस बात पर बहुत दुखी थे कि कथित बुद्धिजीवियों में से लगभग सौ प्रतिशत लोग देश के अगले संग्राम के प्रति उदासीन थे। स्वराज्य के बाद जो माँग-पर्व शुरू हुआ था, उसके नंगे नाच से दुखी थे। दूर भविष्य में कुछ अग्रगति होगी, इस सम्बन्ध में उन्हें बहुत सन्देह था। कांग्रेसी समाजवाद में उनकी कोई

आस्था नहीं थी, इसी कारण वह सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता हो गए थे। 1942 में वह जेल तो काट ही चुके थे।

उनका जन्म 4 मार्च, 1921 में पूर्णिया जिले के एक गाँव औराही हिंगना में हुआ था। घर में खेती थी। शिक्षा दीक्षा फारबिसगंज और विराटनगर में हुई थी। उसके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में। संयोग ऐसा हुआ कि मेरा बचपन भी इन्हीं स्थानों में बीता था, इसलिए मुझे उनसे बहुत कुछ पूछना था। विराटनगर में हमारा बचपन बीता था। वहाँ के एकमात्र स्कूल में पिताजी हेडमास्टर थे और वहाँ कोइराला बन्धु पढ़े, इससे यह समझ में आता है कि नेपाल की राजनीति में रेणु जी को क्यों दिलचस्पी रही और वह उस संग्राम में क्यों लिप्त हुए। समाजवादी के लिए सभी संग्राम अपना है। सभी स्वातन्त्र्य-योद्धा अपने भाई। इस दृष्टि से देखा जाए तो रेणु जी उस आकाश में विचरण करते थे, जहाँ हिन्दी के कम साहित्यकार विचरण करते हैं। रेणु को हम राल्फ फाक्स जैसे लोगों की श्रेणी में रख सकते हैं, जो स्वातन्त्र्य-संग्राम को अपने देश की दीवारों तक सीमित नहीं मानते थे और न यह समझते थे कि शासकों के चमड़े का रंग बदल गया, तो देश की मुक्ति हो गई।

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि रेणु एक दल में शामिल होकर काम कर रहे थे और ईमानदारी से काम कर रहे थे, इसलिए उनकी साहित्यिक दृष्टि किसी प्रकार कठमुल्ला के राहुवाद से ग्रस्त हो गई थी जैसा कि 'मैला आँचल' के सभी पाठक जानते हैं। जो प्रबुद्ध लेखक कलाकार किसी राजनीतिक

दल के साथ काम करता है, उसके सम्बन्ध में यह नहीं समझना चाहिए कि वह उसके सब लोगों को पैगम्बर और हर मामले में अन्तिम सत्य का ठेकेदार मानता है। राजनीति अकेले नहीं चल सकती, इसलिए कई बार लेखक सबसे आत्मीय दल में हो जाता है या उसके साथ चलता है। रवीन्द्र, शरत, प्रेमचन्द मोटे तौर पर स्वातन्त्र्य संग्राम की मुख्य धारा के साथ रहे, पर रेणु अधिक सक्रिय होना चाहते थे, इसलिए वह समाजवादी दल में हो गए, पर उनकी लेखनी ने, जैसा कि उनका साहित्य गवाह है, कभी किसी दल की अन्ध भक्ति की स्याही से अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ा। इस सम्बन्ध में हम अक्सर भूल जाते हैं कि गोर्की और मायकोवस्की लेनिन के प्रति अधिक आस्था और आदर रखने पर भी, दल के सदस्य न तो हुए और न लेनिन ने कभी गोर्की से कहा कि आप हमारे दल की लाल किताब पर ईमान लाएँ। रेणु की यह दोहरी बहादुरी और कृतित्व है कि वह दल की करीब-करीब अपरिहार्य काजल की कोठरी से अपने साहित्य को अछूता रख सके। 'मैला आँचल' आदि में यदि कांग्रेसी के काले कारनामों का दिग्दर्शन और पर्दाफाश है, तो दूसरे दल के लोग भी किसी प्रकार दूध के धुले करके चित्रित नहीं किए गए। और चूँकि उनके साहित्य में मुख्यतः गाँव और कस्बे आते हैं, जो धर्म और परम्परा की बेड़ियों और हथकड़ियों में जकड़े हुए मध्ययुगीय अन्धकार में पड़े हैं, वहाँ पहुँचते-पहुँचते हर विचारधारा के दूध में इतना पानी मिल जाता है कि उसका मूल श्वेत रंग भी खतरे में पड़ जाता है और लगता है कि जैसे

धर्म की यह दशा हुई है कि वह दलबन्दी का एक लचर आध
ार मात्र रह जाता है, उसी तरह गाँवों तक पहुँचते-पहुँचते दलों का होता है। उनके सारे साहित्य के मन्थन के अन्दर से कोई दल होकर सुर्खरू ही निकलता, बल्कि यही सत्य डंके की चोट पर सामने आता है कि—

सबार ऊपर मानुष सत्य
ताहार ऊपर नाई,

यानी, सबसे ऊपर मनुष्य सत्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं है। विचारधाराएँ उसी हद तक वे मनुष्य को शोषण से मुक्त कर पाती हैं, चाहे वह शोषण आर्थिक हो, सामाजिक हो या बौद्धिक हो।

रेणु जी रवीन्द्र साहित्य के परम प्रशंसक थे, शरत उन्हें कंठस्थ-सा था, बंगला के सभी लेखन से वह परिचय रखते थे। बंगला के कई लेखकों से विशेषकर सतीनाथ भादुड़ी से उनका गहरा परिचय था। सतीनाथ ने 'जागरी' और 'ढोंड़ाइ चरित मानस' लिखकर बंगला साहित्य में खलबली मचा दी थी। दुःख है कि 'जागरी' के अत्यन्त अपकृष्ट अनुवाद के जरिए हिन्दी में आने के कारण हिन्दी के विदग्ध लोग उसे सराह नहीं पाए। रेणु समसामयिक बंगला साहित्य में इतने निष्णात और प्रभावित थे कि बिहार के ही एक लेखक ने रेणु पर यह लांछन लगाया कि उन्होंने 'ढोंड़ाइ चरित मानस' की चोरी की है। यह तमाशा प्रेमचन्द के युग में भी हुआ था। मेरे सामने की बात है, तब मैं प्रेमचन्द से स्कूल में पढ़ता था, प्रेमचन्द पर भी यह लांछन लगाया गया था कि उन्होंने

'वैनिटी फेयर' से चोरी की है। 'रेणु' पर इस सम्बन्ध में जो तूफान और बवण्डर उठा और मुझसे भी कहा गया, मैंने एक लेख लिखा और सतीनाथ भादुड़ी ने, जो रेणु को अपना सहयोगी मानते थे, एक बयानात्मक लेख लिखा। असली बात यह थी कि रेणु का 'मैला आँचल' और 'ढोड़ाई' चरित मानस' लगभग एक ही जमीन और शैली पर लिखे हुए दो सम्पूर्ण उपन्यास थे। अक्सर ऐसा होता है कि जो लेखक किसी सफल कृति का अनुकरण कर उसी जमीन और शैली पर लिखता है, वह प्रतिभा की कमी के कारण मुँह के बल गिरता है और उसकी कृति औंधी गिरती है। जब मेघदूत सफल हुआ, तो उसकी स्पर्धा में बहुत से दूत वाले काव्य—जैसे हंसदूत आदि लिखे गए। पर वे किसी उच्च मान तक नहीं पहुँच सके। जयदेव के भी बहुत से अनुकरण हुए, पर जयदेव साहित्य-गगन में सूर्य की तरह देदीप्यमान रहे। पर इस क्षेत्र में ऐसा हुआ कि गुरु गुड़ रह गए, चेला चीनी हो गया।

जब रेणु पर कीचड़ उछाला जा रहा था, और मजे की बात है कि बिहार ही में यह कीचड़ उछला, उसके बाद रेणु से राँची में मेरी भेंट हुई थी। जिन लोगों ने गाली-गलौज का यह सिलसिला चलाया था, उनका उद्देश्य यह था कि यह रेणु कहाँ से एकाएक आ गया, और हम लोग रह गए। साहित्य कला का रथ तभी आगे बढ़ता, जब उसमें नई-नई प्रतिभा का स्फुरण होता रहे, पर घिसी-पीटी हुई मध्यम दर्जे की प्रतिभाओं को अपने को चिरस्थायी बनाने के चक्कर में बराबर रेणु की प्रतिभा को नकराने का कोई चौखट नहीं मिला, तो उन्होंने

उन पर चोरी का लांछन लगाया। पर वह टिक न सका।

रेणु इस आक्रमण से बहुत व्यथित हुए क्योंकि व्यक्ति कितना भी निर्लिप्त हो, उस पर झूठे इलजाम लगाए जाएँ तो वह दुखी हो जाता है और इससे उसकी सृजनशक्ति कुंठित हो जाती है, कम-से-कम सामयिक रूप से। बिहार के साहित्यकारों को रेणु के उदय से खुश होना चाहिए था। पर बिहार का एक महान साहित्यकार जो रेणु के उदय से बहुत ही खुश हुआ था, वह थे दिनकर। जब 'मैला आँचल' प्रकाशित हुआ, उन दिनों दिनकर संसद में थे। और संसद में थे मैथिलीशरण गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन। नवीन को अब लोग भूल से गए हैं। सर्वेपरि उस समर्थ राष्ट्रपति भवन में विराजमान थे राजेन्द्र प्रसाद।

इन संसद सदस्यों में एकमात्र दिनकर और बनारसीदास चतुर्वेदी ही ऐसे थे जो कुछ कष्ट सहकर नई पौध को सामने लाने में कुछ समय देते थे। मुझे अभी तक मैला आँचल की खबर नहीं पहुँची थी। राजधानी उसके प्रकशन से परिचित नहीं थी। दिनकर बिहार से आए और मुझको टेलीफोन किया जैसा कि वह हमेशा दिल्ली आने पर करते थे, क्योंकि वह बंगालियों में प्रचलित 'आड्डा' (गप्पबाजी के अड्डे) के शौकीन थे। अब की बार वह बहुत उत्तेजित थे और उनके बंगले में पहुँचते ही उन्होंने मुझे रेणु का 'मैला आँचल' दिया। वह जानते थे कि मैं 'आजकल' तथा 'सरिता' में आलोचना लिखता था। बोले—पढ़िए, एक महान प्रतिभा का जन्म हुआ है।

उन्हें सुनकर खुशी हुई कि मैं रेणु परिवार को पहले से भली-भाँति जानता था। मैंने जल्दी पुस्तक पढ़ी और दिनकर जी को बताया कि मैं उनसे सहमत हूँ कि यह एक युगान्तकारी प्रतिभा है। 'बलचनमा' की भी पहली प्रशंसा मैंने ही की थी। मैंने कम से कम दो प्रशंसा भरी आलोचनाएँ लिखीं। मैं समझता हूँ, सफल जमे हुए साहित्यकार का एक कर्तव्य यह है कि वह नई प्रतिभाओं को सामने लाए। पितृ-मातृऋण की तरह यह भी एक ऋण है— प्रतिभा के प्रति ऋण। दिनकर जी की चेष्टा से पुस्तक अच्छी तरह फोकस में आ गई और केवल एक कृति के बल पर चोटी के लेखक के रूप में रेणु का डंका सारे हिन्दी जगत् में बजने लगा। यहाँ यह भी बता दिया जाए कि कुछ अच्छे पारखी भी रेणु की प्रतिभा को पहचान न पाए। एक प्रसिद्ध नाम याद आता है रजनी पनिक्कर का। वह 'मैला आँचल' को समझ नहीं पाए, भाषा के कारण। हिन्दी में उपन्यासों की एक अलग विधा मान ली गई, आंचलिक उपन्यास। क्या किसी और भाषा में इस तरह की कोई विधा मानी गई, कई अच्छे उपन्यासकार किसी न किसी इलाके से बँधे होते हैं, जैसे वाल्टर स्कॉट, हार्डी से लेकर बहुत से अमेरिकी उनन्यासकार तक। हाँ, जिनके उपन्यासों का उपजीव्य नगर-जीवन है, वह आंचलिक नहीं, क्योंकि प्रायः सभी नगर एक से हैं। कुछ थोड़ा-बहुत फर्क तो एक घर के कमरों भी होता है। 'युलिसिस' के लेखक जेम्स जायस के बारे में कहा गया कि यदि डब्लिन शहर एकदम नष्ट हो जाए, तो उनके साहित्य से उसका पुनर्निर्माण हो सकता है। वैसे ही रेणु

के साहित्य से समकालीन ग्राम के मानस जीवन का चित्र सामने आता है। स्मरण रहे, रेणु के चित्रित गाँव प्रेमचन्द द्वारा चित्रित गाँवों से कहीं अलग और अधिक जटिल हैं। गाँव वालों को पारम्परिक रूप से जितना पिछड़ा, अलग-थलग माने जाने की प्रथा थी, हम रेणु के उपन्यासों में देखते हैं कि वह उस हद तक मानसिक रूप से पिछडे नहीं हैं। और अब 1977 में पता लग गया कि हमारे मानसिक स्तर में गाँव शहरों से कन्धे मिलाकर चल रहे हैं, यद्यपि वे अब भी गरीब हैं, जिसका पता न होने के कारण कांग्रेस का महल तेज धारा में बह गया। रेणु का साहित्य वह गुमशुदा कड़ी है जिससे हम प्रेमचन्द के गाँवों को आज के गाँवों के साथ मिलाकर समझ सकते हैं। इसी गुण के कारण रेणु का साहित्य समसामयिक काल के किसी इतिहास से अधिक जबर्दस्त ऐतिहासिक अभिलेख है।

वह आपात-स्थिति के विरुद्ध पद्मश्री और सारी अन्य सुविधाएँ छोड़ चुके थे। वह संग्राम करते हुए जेल गए थे और छूटकर बराबर बीमार रहे। कुछ भी हो, रेणु एक साहित्यकार और समाजवादी योद्धा के रूप में अमर हैं। हिन्दी उपन्यास में उनका स्थान प्रेमचन्द और यशपाल के बाद ही है। वह सचमुच ही एक प्रबुद्ध आत्मा थे जिसे जीवन में कभी चैन नहीं मिला।